नरेश मेहता की काव्य भाषा में बिम्ब सौष्ठव

लेखिका – श्रीमती मन्जु
पताः– पत्नी श्री रणधीर सिंह
मकान नं0 116, वार्ड नं0 1, शिव नगर कॉलोनी, नालागढ़ का माजरा, जगाधरी, जिला
यमुनानगर–135003

कवि को अपने अनुभव सत्य की अभिव्यंजना में एक विशेष प्रकार की भाषा अपनानी पड़ती है। तार सप्तक के अपने वक्तव्य में अज्ञेय ने कहा है कि कवि की सबसे पहली मौलिक समस्या यह होती है कि वह व्यक्ति के अनुभूत को किस प्रकार उसकी सम्पूर्णता में समष्टि तक पहुंचाऐं।[1] अपने को कहने के लिए कौनसी भाषा का प्रयोग करें? क्योंकि भाषा के चयन एवं प्रयोग पर ही कविता की सार्थकता टिकी रहती है। यदि भाषा में मन को दहला देने वाली आग नहीं है तो वह भाषा कवि के कथ्य को पूर्ण रूपेण स्पष्ट नहीं कर पाती।

काव्य भाषा के सम्बंध में नरेश मेहता लिखते हैं– प्रायः भाषा के स्तर पर ही अधिकांश कवि, काव्य श्रोता एवं पाठक काव्यात्मकता की तलाश में रहते हैं। अतः भाषा के बन्धन का नहीं मुक्ति का नाम काव्य है। नरेश मेहता का मानना है कि उक्त मनःस्थिति को व्यक्त करने के लिए भाषा का सांस्कारिक होना भी बहुत जरूरी है। जहां तक शब्दों के अर्थों का प्रश्न है उनका मानना है कि ''शब्दों के नये अर्थ से तात्पर्य नयी अर्थ भाव भंगिमा से है। मुझे ऐसा लगता है कि प्राचीन शब्दों को भी सर्वथा नया अर्थ मर्म के साथ प्रयुक्त किया जा सकता है। जब कोई भी भाषा रचना–प्रक्रिया में से होकर सामने आती है तभी उसमें कलात्मक जीवन्तता आ सकती है।''[2]

नरेश मेहता ने भाषा में व्यवहारिकता, अर्थ गर्भिता और भाषा के विशिष्ट प्रयोग के लिए शब्द चित्रों का प्रयोग किया है। उनकी भाषा की बिम्ब योजना बहुत ही उत्कृष्ट हे। उनकी बिम्ब भाषा को अभिव्यंजना शक्ति प्रदान करते हैं व जितने अपनी विषय वस्तु के प्रति सजग है उतने ही भाषा में बिम्बों के प्रति निष्ठावान है।

नरेश मेहता की भाषा विषय के अनुरूप बदलती रहती है। उनकी भाषा का संस्कार अनूठा ओर विचित्रा है। भाषा में आए बिम्ब भाषा की सम्प्रेषणीयता का सार्थक बनाता है। भाषा को लेकर नरेश मेहता 'उत्सवा' की भूमिका में लिखते हैं– भाषा न यात्रा है न यात्री, वह तो केवल मार्ग है। गन्तव्य पर पहुँचने का तात्पर्य ही है मार्ग का निःशेष होना। रचना में निहित कविता की प्राप्ति, रचना में प्रयुक्त भाषा को उचारोचार छोड़ते जाना है। भवातीतता के समय जिस प्रकार कवि और भाषा वहां उपस्थित

[1] स0 अज्ञेय : तार सप्तक, ;वक्तव्यद्ध, पृ0 2
डॉ0 शशिबाला रावत, नरेश मेहता के काव्य का अनुशीलन ;रस सिद्वांत के परिप्रेक्ष्य मेंद्ध, पृ0 75

नहीं थे, वे उस साक्षात्कर्ता मनीषी व्यक्त्वि चैतन्य पुरूष में लीन थे, उसी प्रकार काव्यानन्द के लिए भी यह प्रक्रिया है।''[3]

नरेश मेहता की भाषा का सबसे बड़ा गुण उसकी संप्रेषणीयता है। उन्होने भाव, प्रसंग, संदर्भ ओर विचार को ध्यान में रखते हुए भाषा और भाषा में बिम्बों का प्रयोग किया है–

डॉ0 कल्याण वैष्णव, नरेश मेहता के काव्य का अनुशीलन, पृ0 233

''हिरोशिमा में मनुज मर गया
वही मनुज, जिसके सिर पर यह गगन मुकुट है
अन्धकार सूरज मशाल ले किरनों का केसर
देने को साथ चल रहा,
और जिसे, वह दिन की चिड़िया गगन आम
पर दिन भर बैठी
धूप सुनाती,
वही सृष्टि– श्री मनुज आज विज्ञान–कब्र में
मरा पड़ा है।''[4]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'सिर', 'मुकुट' ;दृश्य बिम्बद्ध, अंधकार, सूर्य, किरणें, चिड़िया, गगन, आम, धूप ;प्राकृतिक बिम्बद्ध, कब्र, मशाल, ;दृश्य बिम्बद्ध आदि का प्रयोग करते हुए कवि ने द्वितीय विश्वयुद्व के नरसंहार जापान के हिरोशिमा नगर पर गिरने वाले बम आदि का वर्णन करते हुए मनुष के विध्वंस की सम्प्रेषणीयता में आशावादी स्वर की अभिव्यक्ति की है। इन पंक्तियों में अलंकृत शैली का प्रयोग किया गया है। प्राकृतिक उपादानों का मानवीकरण हुआ है। कवि की बिम्ब योजना और अलंकृत शैली से भाषा की संप्रेषणीयता के सौन्दर्य में अभिवृति हुई है।

'प्रवाद पर्व' में राम, प्रजा तथा उसकी आवाज के माध्यम से जनता की आवाज को महत्व देते हैं। आज के राजनेताओं को सीख देते हुए वे कहते हैं कि संघ के सभी शक्तियों को केवल अपने उपभोग के लिए प्रयुक्त करना ये सही नहीं है। प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में प्रजा के सम्मान और सुख सुविधा को ही सामने रखना आवश्यक है। महान व्यक्ति स्वयं को इतिहास को समर्पित कर देते हैं। जन कल्याण के लिए किये गये उनके कर्म ही इतिहास बनते हैं। इसलिए राम का मानना है कि इतिहास खडग् से नहीं मानवीय उदातत्वा से लिखा जाना चाहिए।

राम की दृष्टि में साधारण जन की उठी तर्जनी का प्रति ऐतिहासिक महत्व है। जब किसी पर ऐसी शंका की जाती है तो राजतन्त्रा और इतिहास में कोलाहल भर उठता है क्योंकि यह मात्रा अंगुली नहीं है उसका एक ऐतिहासिक व्यकित्व भी है और महत्व भी–

[4] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध, दूसरा सत्पक, ;समय देवताद्ध, पृ0 28

''तर्जनी
वह किसी की भी हो
वाणी ही होती है
यह कोई आवश्यक नहीं कि
शक्ति केवल मंत्राों और श्लोंकों में ही हो
अनेक बार
ऐसी ऐतिहासिक अनाम तर्जनी में भी
इतिहास को
प्रतिइतिहास में बदल देने की शक्ति होती है।''[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'तर्जनी' ;ऐन्द्रिक बिम्बद्ध के माध्यम से कवि ने आम आदमी के महत्व और प्रजातन्त्रा में आम–आदमी की भूमिका को संप्रेषित किया है।

नरेश मेहता की काव्य भाषा में प्रवाहमयता है। भाषा की गतिशीलता में कवि की भावनाओं का स्पंदन होता है। 'बोलने दो चीड़ को' और 'मेरा समर्पित एकान्त', 'संशय की एक रात', 'तुम मेरा मौन हो' और 'देखना एक दिन' की कविताओं की भाषा में कवि की चेतना का प्रवाह देखने को मिलता है। भाषा की इस प्रवाहमयता को बनाये रखने में कवि की बिम्ब योजना का बहुत योगदान है। कवि के बिम्ब पौराणिक भी हैं और आधुनिक भी है। 'संशय की एक रात' प्रबन्ध कृति में राम के मन में युद्व के प्रति वितृष्णा। युद्व से आसीन हुए राम अपना ध्नुष हो जाते हैं। नरसंहार और रक्तपात से मिलने वाले राज्य को वह नहीं चाहते। वे कहते हैं–

''मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए
बाण–बिद्व पाखी–सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए
मानव के रक्त पग पर धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए।''[6]

युद्व के प्रति इस विरक्ति का परिणाम यह होता है कि उनके मन में संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्प हो उठती है। यहां तक कि उस क्षण राम अपने अस्तित्व को भी विस्मरण कर जाना चाहते हैं। वे कहते हैं–

[5] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध, प्रवाद पर्व, पृ0 363
[6] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध, संशय की एक रात, पृ0

''इतिहास के हाथों
बाण बनने से अध्कि अच्छा है
स्वयं हम
अंधेरों में यात्रा करते हुए
खो जायें।''[7]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'बाण बिद्व पाखी' ;दृश्य बिम्बद्ध धरती ;प्राकृतिक बिम्बद्ध, सीता ;पौराणिक बिम्बद्ध आदि बिम्बों का प्रयोग कर कवि ने भाषा की प्रवाहमयता के गुण का सृजन किया है।

'प्रवाद पर्व' कृति की भाषा में गजब की प्रवाहमयता है। कवि ने चुन–चुन कर बिम्बों का प्रयोग किया है और बिम्ब भाषा को गतिशीलता देने में सार्थक सिद्व हुए हैं।

''हाथ
झुकाया जा सकता है
पर
एक अनाम साधारणजन की तर्जनी
समय के पन्नों
और लोगों के इतिहास–निरीह नेत्रों में जब
एक जलता प्रश्न
उत्कीर्णता कर देती है
जैसे प्रति–शिलालेख हो तब
उसे किस राजाज्ञा
या राजदण्ड
या आदेश खुदे शिलालेखों से
अनहुआ किया जा सकता है राम
और क्यों??''[8]

राम का मानना है कि प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में आम–आदमी की आवाज को, उसकी उठी हुई तर्जनी को किसी तरह से रोका नहीं जा सकता। प्रजातन्त्रा में सभी को अपनी बात कहने का अपने विचार रखने का अधिकार होता है। 'हाथ', 'तर्जनी', 'नेत्रा' ;ऐन्द्रिक बिम्बद्ध 'शिला लेख' ;दृश्य बिम्बद्ध 'राम' ;पौराणिक बिम्बद्ध के माध्यम से कवि ने भाषा की गतिशलता को बड़े कौशल से बनाए रखा है।

नरेश मेहता की भाषा में प्रसाद गुण मधुरता ओर द्रवणशीलता पर्याप्त मात्रा में मिलती है। उनकी कविताओं में जो सौन्दर्य भाव दृष्टिगोचर होते हैं उनकी पृष्ठभूमि में भाषा की मधुरता के गुण का महत्वपूर्ण योगदान है।

[7] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध, संशय की एक रात, पृ0 115
[8] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध, प्रवाद पर्व, पृ0 364

प्राकृतिक सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य व मानवीय करूणा की अभिव्यक्ति के कारण ही भाषा मधुर हो पायी है। 'सम्भ्रम' कविता में चन्द्रोदय का लालित्य भाषा की मधुरता को बनाता है–

''उस दिन
चन्द्रोदय की साक्षी में
उड़ती जंगली हवाओं के बीच
हमारी गुंथी अंगुलियों में
कैसे एक राग–फूल ने जन्म लिया था
देवताओं ने तो नहीं
पर आकाश
जरूर कुछ–कुछ पुष्प वर्षा करता लग रहा था।''[9]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों मं 'चन्द्रोदय' ;प्राकृतिक बिम्बद्ध, जंगली ;प्राकृतिक बिम्बद्ध, 'अंगुलियां' ;एन्द्रिक बिम्बद्ध, 'फूल' ;प्राकृतिक बिम्बद्ध, 'देवताओं' ;पौराणिक बिम्बद्ध, 'आकाश, 'पुष्प वर्षा' ;प्राकृतिक बिम्बद्ध का प्रयोग करते हुए कवि ने भाषा में प्रसाद गुण और माधुर्य को बनाए रखने में सफलता प्राप्त की है–

नरेश मेहता ने कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए भी मधुर और मृशरण भाषा का प्रयोग किया है। उदाहरण प्रस्तुत है–

''शुभ हो''
कहते हुए तुमने
कुरते के बटन–होल में खोंस दिया
एक रक्त गुलाब
जैसे मेरे जन्म दिन को सार्थक सुगन्ध देकर
अपनी अंगुलियों से
मेरे वक्षस्थल पर अपने को लिख दिया''[10]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने प्रेमी और प्रेमिका की आत्मीयता की अभिव्यक्ति 'रक्त गुलाब' ;प्राकृतिक बिम्बद्ध द्वारा की है। प्रेमिका प्रेमी से कहती है कि तुमने मुझे शुभ कहते हुए अपने कुर्तो के बटन ;दृश्य बिम्बद्ध को इस प्रकार स्थान दिया जिस प्रकार खिलते हुए गुलाब की पंखुड़ियां प्रातः ;प्राकृतिक बिम्बद्ध खिल उठती है। प्रेमिका आगे कहती है कि तुमने मेरे जन्म दिन के अवसर पर एक 'सुगन्ध' ;घ्राण बिम्बद्ध अपनी अंगुलियों से ;एन्द्रिक बिम्बद्ध मेरे 'वक्षस्थल' ;ऐन्द्रिक बिम्बद्ध अपनी अमिट पहचान बना ली है।

[9] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध, देखना एक दिन, पृ0 132–133
[10] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध, तुम मेरा मौन हो, पृ0 285

नरेश मेहता की भाषा में सपाट बयानी का गुण है। सपाटबयानी की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि इसमें जीवन के महत्वपूर्ण और गम्भीर सत्य को बड़ी सरलता से अभिव्यक्त कर दिया जाता है। सपाट बयानी को साफगोई भी कहा जाता है। सहजता, स्वाभाविकता, सरलता और बोध गम्यता सपाट बयानी की विशेषता है। सपाट बयानी में कवि बिना किसी लाग लपेट अथवा शब्दों के मुलम्मे से हटकर सीधी और स्पष्ट भाषा में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है–

''मुझे याद हो आयी
वह फाल्गुन संध्या
पीठ ओर से
मेरे कन्धे पर टिका
तुम्हारा वह माथ,
वह वार्तालाप
जिसकी कोई भाषा तो नहीं थी
पर थरथराते अधर थे
तुम्हारा उपस्थित होना
केवल भाषा नहीं, सुगन्ध भी होता है।''[11]

उपर्युक्त पंक्तियों में भाषा का सहज और सरल रूप दृष्टिगोचर होता है। 'फाल्गुन संध्या' ;प्राकृतिक बिम्बद्ध पीठ, कन्धे, माथ, अधर ;ऐन्द्रिक बिम्बद्ध 'सुगन्ध' ;घ्राणबिम्बद्ध का प्रयोग करते हुए कवि ने भाषा के सपाटबयानी गुण को प्रस्तुत किया है।

नरेश मेहता की काव्य भाषा बोधगम्य है;उनके शब्द जैसे स्वयं अपने आप की अभिव्यक्ति करते है। भाषा की सहजता और सरलता उनके काव्य की विशेषता है। 'प्रवाद पर्व' की भूमिका में कवि ने लिखा है 'भाषा के स्तर पर अधिकांश कवि, काव्य–श्रोता एवं पाठक काव्यात्मककता की तलाश में रहते हैं। कितने जानते हैं कि काव्य, भाषा तो शब्द और अर्थ की मुक्ति दिलाने की प्रक्रिया है। भाषा के बन्धन का नहीं मुक्ति का नाम काव्य है।''[12] शब्दों का सरल प्रयोग ही भाषा को बोधगम्य बनाता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

''मुझे मालूम है
हवा में हिलते परदों के
बोलते घुंघरूओं के कारण
किसी तीसरे की उपस्थिति का आभास
तुम्हें चौकस कर जाता है, कि
अरण्या से बाहर

[11] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध, तुम मेरा मौन हो, पृ0 238
[12] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध प्रवाद पर्व, भूमिका, पृ0 548

मृग को नहीं आना चाहिए।''[13]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'हवा' ;प्राकृतिक बिम्बद्ध, हिलते परदों ;दृश्य बिम्बद्ध, बोलते 'घूंघरूओं' ;श्रव्य बिम्बद्ध अख्य एवं मृग ;प्राकृतिक बिम्बद्ध का प्रयोग करते हुए कवि ने यह व्यक्त किया है कि प्रेमी और प्रेमिका के बीच जब किसी तीसरे की उपस्थिति का आभास होता है तो दोनों सावधान हो उठते हैं व चौकस हो जाते हैं उनके प्यार भरे वार्तालाप में व्यावधान पैदा हो जाता है।

नरेश मेहता की काव्य भाषा संस्कारित है संस्कारी भाषा की विशिष्टता बतलाते हुए नरेश मेहता लिखते हैं– ''संस्कारी भाषा द्विजरूपा होती है। जो भाषा जितनी अधिक संस्कारित होगी उसके दो लक्षण स्पष्ट होंगें। एक तो यह कि उस भाषा का सामान्य रूप भी दैनन्दिनता में शीलवान लगने लगेगा दूसरे संस्कारी भाषा अपने विशिष्ट रूप में
र्ध्ममयी होगी।''[14] एक उदाहरण प्रस्तुत है–

''कविता
जब केवल विचार होती है
तब वह
सत्य का साक्षात्,
तब वह
परम–पुरूष की लीला
तब वह
आत्म–उपनिषद् होती है,
पर, जब वह
भाषा के भोजपत्रा पहन लेती है
तब वह
आनन्द के मन्त्रा
आसक्ति के पद
तन्मयता के कीर्तन
विनय की प्रार्थना
ओर लालित्य के गान के
अपराजित हिमालय तथा अक्षत उपत्यकाओं से उतरतरी हुई
जलते मानवीय मैदानों में पहुंच कर
विराट करूणा
पीड़ा मात्रा बन जाती है''।[15]

[13] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध,, तुम मेरा मौन हो, पृ0 247
[14] नरेश मेहता, काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व, पृ0 10–11

उपर्युक्त पंक्तियों में परम–पुरूष की लीला ;दार्शनिक बिम्बद्ध भोज पत्रा ;प्राकृतिक बिम्बद्ध मंत्रा, पद्य, कीर्तन, प्रार्थना ;आध्यात्मिक बिम्बद्ध हिमालय, अक्षत, उपत्कायाओं, मैदान ;प्राकृतिक बिम्बद्ध का प्रयोग करते हुए कवि ने संस्कारी भाषा का परिचय दिया है।

उपर्युक्त संदर्भो से स्पष्ट है कि नरेश मेहता की काव्य भाषा शब्द चित्राों की एक एलबम है। ऐसी एलबम जिसमें, प्राकृतिक, सांस्कृतिक, पौराणिक और ऐन्द्रिक संदर्भो के मुंह बोलते चित्रा हैं। बिम्बों में प्रयुक्त शब्दावली का एक–एक शब्द कवि के अनुभवों से गुजरा हुआ और वर्तमान संदर्भो से जुड़ा हुआ है। बिम्बों ने भाषा के माध्यम से काव्य सौन्दर्य के चित्राों को और सुन्दर बनाया है। कवि ने भाषा में स्त्रोत और ऐन्द्रिक बिम्बों का सार्थक ओर सफल प्रयोग किया है।

[15] नरेश मेहता, समिधा ;भाग–पद्ध, अरण्या, 'अरण्यानी से वापसी, पृ0 342

दुःख का मूल तृष्णा

इच्छाएँ बे–लगाम होती हैं। मनुष्य की इच्छा कभी भी पूर्ण होती नहीं है। अतः किसी ने ठीक ही कहा है– ''यदि इच्छा घोड़े के रूप में होती तो कोई मूर्ख ही उस पर चढ़ता है। (प्ि ूपींमे ूमतम ीवतेमेए वदसल विवसे ूवनसक तपकम जीमउ) क्योंकि बे–लगाम और चंचल घोड़े पर तो कोई बुद्विमान नहीं चढ़ना चाहेगा और इच्छाएँ तो बेकाबू घोड़े की तरह है ही। वे आगे–2 सरपट चलती ही जाती हैं। वे रुकती तो हैं नहीं।

अन्ततः निरंकुश इच्छा वाले मनुष्य का वही हाल होता है जोकि एक बे–लगाम, परों वाले घोड़े पर सवार होने वाले व्यक्ति का होता है।'' अतः सच्चा सुख तो वासनाओं, इच्छाओं, लोभ व मोह को त्यागने से ही होता है। महान संतों ने कहा है–

।। दोहा।।

कि त्रिासना है डाकिनी, कि जीवन का काल।
और और निसदिन चहै, जीवन करै बेहाल।।

अर्थात् मनुष्य के दुःखो का कारण तथा काल के मुँह में ले जाने वाली केवलमात्रा एक तृष्णा ही है। यह एक ऐसी डाकिनी है, जो मनुष्य की आत्मिक सुख–सम्पत्ति को छीनकर उसके जीवन को बेहाल कर देती है। मनुष्य की इच्छाएँ स्वप्न की पिपासा की भाँति कभी बुझती ही नही। मनुष्य की एक इच्छा अभी पूर्ण होती ही नहीं कि उससे भी प्रबल दो–चार अन्य इच्छाएँ उभर आती है। उन दो–चार की पूर्ति होती है,

तो दस–बीस और उठ खड़ी होती है। मनुष्य के मन में हजारों ऐसी कामनाएँ भरी पड़ी हैं जिनको पूरा करने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है तथा जिनकी पूर्ति के वह मर मिटने को भी तैयार हो जाता है। जब वह इस संसार से अन्तिम विदाई लेता है तब भी उसके मन में कसक बनी रहती है कि काश जीवन के कुछ और पल मिल जाते तो वह अपनी कुछ और इच्छाएँ पूर्ण कर लेता। भर्तृहरि महाराज जी का कथन है–

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।
तपो न तप्तं वयमेव तप्तः।।
कालो न यातो वयमेव याताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

अर्थात् हमने जगत् के भोगों का उपयोग नहीं किया वरन् हम ही इन भोगों द्वारा भोगे गये है अर्थात् इन भोगों ने ही हमें सिर से पाँव तक खा लिया है। हमने तप को नहीं तपाया वरन् तप ने ही हमें तपा डाला। अथवा तप करने से हमारे मन में घमण्ड या अहंकार की आँच उत्पन्न हो गई। हमने समय को व्यतीत नहीं किया, वरन् समय ने ही हमें व्यतीत (बिता दिया) कर दिया अर्थात् समय के व्यतीत होने के साथ–2 हमारा ही जगत् से विदाई करने का समय आ पहुँचा। इसी प्रकार हमारे मन में बसी हुई तृष्णा तो जर्जर अथवा जीर्ण नहीं हुई, स्वयं हम ही जीर्ण–शीर्ण और जर्जर काया वाले बन गये।

कितनी आश्चर्य की बात है कि हम वृद्वावस्था को प्राप्त हो जा रहे हैं अर्थात् शनैः–शनैः हम मौत के मुँह में पहुँचते जा रहे हैं, उधर हमारी इच्छाएँ, अपने यौवन रूप को प्राप्त करती जा रही हैं अर्थात् हमारी बे–लगाम इच्छाएँ किसी भी प्रकार से कम होने का नाम नहीं ले रही है वरन् दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इस संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जो यह कह सके कि उसकी समस्त इच्छाओं की पूर्ति हो गई। सन्तसुन्दरदास जी का कथन है कि–

।। कविता।।

तीनहिं लोक आहार कियो सब,
सात समुंद्र पियो पुनि पानी।
और जहाँ तहाँ ताकत डोलत,
काढ़त आँख डरावत प्राणी।।
दाँत दिखावत जीभ हिलावत,
याहि ते मैं यह डाकिनी जानी।
सुन्दर खात भये कितने दिन,
हे तृष्णा अजहूँ न अघानी।।

अर्थात् तृष्णा तो उस डायन के समान है जिसने तीनों लोकों को खा लिया है और सात समुंद्रों का पानी भी पी लिया, किन्तु इतने से भी इसका पेट नहीं भरा तो यह खाने की खोज में जहाँ तहाँ ताक–झाँक करती फिरती है। तृप्ति न होने पर, गुस्से से भरी चौड़ी–2 अपनी आँखों को दिखाकर, दाँतो को किट–किटाकर तथा जीभ को लपलपाकर यह समस्त जगत् के प्राणियों को डराती घूम रही है। इसको इसलिए डाकिनी कहा गया है क्योंकि संसार का भक्षण करते–करते इसे कितना ही समय व्यतीत हो गया, किन्तु अभी तक इसकी तृप्ति नहीं हो सकी है। अब भी यह ज्यों की त्यों भूखी है।

कामना एकमात्र कामना नहीं बल्कि हजारों इच्छाओं को छिपाये हुए वह वृक्ष है, जिसके एक–एक फल में पुनः हजारों बीज उत्पन्न हो जाते हैं। इन इच्छाओं को पूरा करने में उसका सारा जीवन व्यतीत हो गया न तो उसको इस जीवन में सुख शान्ति मिली और न ही इच्छाएँ पूर्ण हुई–

।। दोहा ।।

तृष्णावन्त जग में दुःखी, आठों पहर कंगाल।
जिन पाया सन्तोष धन, सो जन मालामाल।।

अर्थात् तृष्णा में डूबा हुआ प्राणी इस जगत् में सदा दुःखी रहता है। चाहे कितनी ही धन–सम्पदा उसके पास हो, उसकी ज्यादा पाने की प्रवृत्ति उसे आठों पहर कंगाल–दरिद्र बनाये रखती है। इसके विपरीत वे निर्धन प्राणी, जिनके पास संतोषरूपी धन है, वे सदा सुखी रहते हैं क्योंकि संतोषरूपी धन ही सब सुखों की खान है तथा आशा, तृष्णा अथवा लोभ व मोह ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। कबीरदास जी का कथन है कि–

।। दोहा ।।

गोधन गजधन बाजिधन, और रतनधन खान।
जो आवे संतोष धन, सो जन मालामाल।।

संतोष सबसे उत्तम एवं महान धन है। संतोषवृत्ति की महिमा करते हुए हितोपदेश में वर्णन है कि–

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्।।

असन्तोषः परं दुखं सन्तोषः परमं सुखम्।
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् संतुष्टः सततं भवेत।।

– (पदमपुराण, सृष्टिखण्ड)

अर्थात् सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त एवं शान्तचित्त वाले पुरुषों को जो सुख प्राप्त होता है, वह धन के लोभ से इधर–उधर भटकने वालों को कहाँ मिल सकता है? असंतोष (तृष्णा अथवा लोभ) ही सबसे बढ़कर दुःख है और सन्तोष ही सबसे बड़ा सुख है, अतः सुख चाहने वाले पुरुष को सदा सन्तुष्ट रहना चाहिए।

महर्षि शौनक जी का भी कथन है कि–

अन्तो नास्ति पिपासायाः सन्तोषः परमं सुखम्।
तस्मात् सन्तोषमेवेह परं पश्चयन्ति पण्डिताः।।

–(महाभारत, वनपर्व)

अर्थात् तृष्णा का कहीं अन्त नहीं है, संतोष में ही परम सुख है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष सन्तोष को ही श्रेष्ठ मानते हैं।

सन्त सुन्दरदास जी कहते हैं कि– ''इस संसार में आकर भला कौन रह सकता है? फिर तू क्या जीवन का भरोसा करता है? जब प्रत्येक अवस्था में जगत् को छोड़कर ही जाना है तो प्रमाद में पड़कर भगवान के भजन को क्यों भुला दिया है? क्यों नहीं मालिक का सुमिरण–भजन करता?''

अज्ञानता और भ्रम के कारण मनुष्य इन्द्रिय और क्षणभंगुर सुखों को ही सच्चा और शाश्वत सुख समझने लगता है। जहर की गोली अगर देखने में सुन्दर व मीठी प्रतीत होती है तो क्या उसका असर विष्यमय न होगा? ठीक इसी प्रकार सांसारिक इच्छाओं में सुख तो भासता है जो क्षणिक और नाशवान् होता है। उसका परिणाम भी हमेशा दुःखदायी होता है। माया के पर्दे के कारण मनुष्य इस संसार के मोहक एवं आकर्षक रूप के पीछे की वास्तविकता को देख ही नहीं पाता। जैसे रामचरित मानस में लिखा है–

।। चौपाई।।

नयन दोष जाँकह जब होई।
पीत बरन शशिकहँ कह सोई।।
जब जेहि दिशि भ्रम होई खगेशा।
सो कह पश्चिम उगेउ दिनेशा।।
नौकारूढ़ चलत जग देखा।
अचल मोहवश आपुहिं लेखा।।
बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी।
कहहिं परस्पर मिथ्यावादी।।

सन्त तुलसीदास जी कहते हैं कि जब किसी व्यक्ति को पीलिया हो जाता है तो वह चाँद को भी पीले रंग का कहने लगता है। जब किसी व्यक्ति को दिशा भ्रम हो जाता है, तब वह यह कहता है कि सूरज पश्चिम से उदय हुआ है। नाव या रेल में बैठा व्यक्ति तट पर दिखाई देने वाले भवनों और वृक्षों को चलता हुआ बताता है जबकि भ्रमवश स्वयं को अचल समझता है। इसी प्रकार गोलचक्र में घूमते–2 जब बच्चे का मस्तिष्क चकरा जाता है, तब उसे सभी दिशायें तथा मकान घूमते हुए प्रतीत होते हैं परन्तु सच तो यह है कि सबकुछ असत्य और मिथ्या होता है। इसी प्रकार संसार का मोहक एवं आकर्षक रूप भी मिथ्या है।

चूँकि मनुष्य की दृष्टि सत्य पारखी नहीं है, इसी कारण वह इस संसार को आकर्षक, रसमय एवं लुभावना मानता है। केवल थोड़े समय के लिए ये भौतिक सुख जो मोहक, लुभावने और आनन्ददायक प्रतीत होते हैं, बाद में प्रायः दुःख और कल्पना ही देते हैं। यदि वह यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखें तो उसे ज्ञात हो जाएगा कि जगत् का यथार्थ रूप कैसा भयानक है? जगत् की नश्वरता को प्रमाणित करते हुए परमसंत कबीरदास जी कहते हैं कि–

।। दोहा।।

रहना नहिं देस बेगाना है।।
यह संसार कागज की पुड़ियां, बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार कांटों की बाड़ी, उलझ–उलझ मर जाना है।
यह संसार झाड़ और झाँकर, आग लगे जल जाना है।
कहत कबीर सुनो भई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है।

अर्थात् यह संसार प्रदेश है और हम यहाँ परदेसी हैं, हमें यहाँ सदा नहीं रहना है। यह जगत् कागज की पुड़िया के समान है, जो जल की एक बूँद पड़ने से ही घुल जाएगी। यह संसार काँटों की एक ऐसी बाड़ी है जिसमें उलझ–उलझकर मनुष्य मर जायेगा। यह जग् सूखे झाड़–झँखाड़ की भाँति है, जो अग्नि में जलकर भस्म हो जाएगा। कबीरदास जी कहते हैं कि– ''हे प्रभु के प्यारे सुनो! इस जीवात्मा के लिए

एकमात्र ठिकाना सद्गुरु का नाम ही है जो हमें समस्त सांसारिक बंधनों (माया, मोह, लोभ, काम, क्रोध आदि) से मुक्त करवा परमपिता परमेश्वर के चरणों की प्रतीति करवाता है।

कबीरदास जी कहते हैं कि जिस नश्वर शरीर पर अभिमान करके तूने अपने अन्दर हजारों कामनाओं को पाल रखा है तथा जिनकी पूर्ति के लिए तू गलत कार्यों अथवा पाप करने से भी नहीं डरता, वहीं शरीर तूझे छोड़ एक दिन धूलि में मिल जाएगा। धनी धरमदास जी को भी जगत् का सब कुछ कच्ची मिट्टी के घड़े, धुआँ का धौलहर, बालू की दीवार की भाँति क्षणिक प्रतीत होता है–

जस धुआँ के धरोहरा, जस बालू के रेत।
हवा लगे सब मिटि गये, जस करतब प्रेत।।

संत दादूदयाल मनुष्य को उद्‌बोध्ति करते हुए कहते हैं कि हे मनुष्य, जब इस दुनिया का मर्म कोई नहीं जान सका, तब तुम्हें इसके प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। गुरु नानक भी चमक दमक वाले इस संसार को अनित्य मानते है। वे कहते हैं कि मानव जीवन की सफलता व ध्येय यहीं है कि वह इच्छाओं की अग्नि को प्रचण्ड न करें वरन् सच्चे नाम में दिल लगायें–

आसा करता जग मुआ आसा मरै न जाई।
नानक आसा पूरीआ सचे सिउ चितु लाई।।

संत मलूकदास को भी समस्त संसार मरा हुआ प्रतीत होता है और संसार का समस्त ऐश्वर्य 'फटकन' लगता है–

जेते सुख संसार के इकट्‌ठे किये बटोर।
कन थोरे कांकर घने, देखा फटक पछोर।।

भगवान श्रीराम्‌चन्द्र जी ने मुनि वशिष्ठ के प्रति एक बार कहा था– हे भगवान! बाल्यावस्था के दिन तो नादानी में बीत जाते हैं। युवावस्था में वह प्रभु की स्मृति को विस्मृत कर पाप एवं अनर्थ के कार्य कराने वाली तृष्णाओं की ओर घसीट कर ले जाती है फिर भी उसके हृदय में कोई ग्लानि या प्रायश्चित भी नहीं होता। जब वृद्धावस्था को प्राप्त करता है, तब पश्चाताप करने से क्या लाभ? क्षणिक एवं तुच्छ भौतिक व शारीरिक सुखों को प्राप्त कर मनुष्य गर्व से फूला नहीं समाता। यह जीव की अज्ञानता नहीं है तो और क्या है?

असली दौलत तो परमात्मा के ज्ञान की भक्ति है। कबीरदास जी का कथन है कि–

सोच–समझु अभिमानी, चादर भई है पुरानी।
टुकड़े–टुकड़े जोङि जुगत सो, सीके अँग लिपटानी।
कर डारी मैली पापन सो, लोभ–मोह में सानी।
ना यहि लग्यो ज्ञान कै साबुन, ना धोई मल पानी।
सारी उमिर ओढ़ते बीती, भली–बुरी नहिं जानी।
संका मान जान दिए अपने, यह चीज है बिरानी।
कहत कबीर धरि राखु जतन से, फेर हाथ नहीं आनी।।

अर्थात् अरे अभिमानी जीव अब तेरी चादर बहुत पुरानी हो गई है। इस संसार में तू टुकड़े–टुकड़े जोड़कर रखता है और लालच में पड़ा रहता है। इस संसार में माया, मोह, लोभ के जाल में सना रहता है। इन सबसे दूर तूने अपने ह्रदय को ज्ञान के साबुन और पानी से धोकर नहीं रखा। तेरी सारी उम्र ऐसे ही बीत गई और तूने भली–बुरी बात को नहीं जाना। कबीरदास जी कहते हैं कि प्रभु को पहचान, यह चीज ऐसी बिरानी है जिसको तूझे संभाल कर रखना है। प्रभु के ज्ञान की भक्ति फिर तेरे हाथ नहीं आ सकती अर्थात् माया, मोह, लोभ, वासना व सब तरह की भौतिक अकांक्षाओं को समाप्त कर तूझे परमात्मा रूपी मर्म को समझना चाहिए।

सब दुःखों का मूल तृष्णा उस काली नागिन के समान है जो सहस्त्रों कुटिलाओं से परिपूर्ण होती है। विषयभोग ही उसका कोमल स्पर्श है। वह विषमतारूपी विष को उगलती है और तनिक सा स्पर्श हो जाने पर भी डस लेती हैः–

कुटिला कोमल स्पर्श विषवैषम्य शंसनि।
दशत्यपि मनाक् सपृष्टा तृष्णा कृष्णेवभोगिनी।।

महान संत कबीरदास जी का कथन है किः–

!! दोहा !!

कबीर माया नागिनी, जगत् रही लिपटाय।
जो इसकी सेवा करें, तिस ही को फिर खाय।।

अर्थात् तृष्णा व लोभ को वशीभूत हुआ मानव उस मालिक की पहचान एवं बंदगी नहीं करता जिसने उसको बनाया है। वह तो माया को ही सर्वश्रेष्ठ मान बैठा है। मानव की बुद्धि पर भ्रम और संशय के पर्दे पड जाते है। मायावश वह अपने ध्येय को विस्मृत कर बैठता है।

निःसंदेह मनुष्य को इसी संसार में जीवनयापन करना है परन्तु संसार को चित्र में बसा लेना तो नादानी है। जिसका परिणाम अशांति ही है जो उसे आठों पहर चैन से जीने नहीं देतीः–

जाको रहना उत्त घर, सो क्यों लोडै इत्त।
जैसे पर घर पाहुना, रहत उठाये चित।।

जब यह देश तेरा अपना वास्तविक देश नहीं है। आत्मा तो परमात्मा का अंश है और परमात्मा का धाम ही उसका वास्तविक देश है तो फिर जगत् की तथा जगत् के भोगों की कामना को चित में बसाने का क्या फायदा? एकमात्र मालिक का नाम ही सत् है तथा जगत् मिथ्या एवं असत् है। नाम के प्रताप से समस्त चिन्तायें, कल्पनायें, क्लेश एवं दुःख स्वतः नष्ट हो जाते है। नाम से दिल लगाने का मतलब यह नहीं कि संसार के व्यवहार से किनारा कर लो अपितु जगत् में रहकर जगत् के भोग– पदार्थो का उपयोग निःसन्देह करो, परन्तु इनके उपयोग में अपने चित को मत उलझाओ। सन्त दूलनदास जी कहते है कि –

!! दोहा !!

जग रहो जग ते अलग रहु, जोग जुगति की रीति।
दूलन हिरदे नाम तें, लाई रहौ दृढ़ प्रीति।

मनुष्य माया के धोखें में आकर यहीं समझता है कि माया के सामानों में सुख है, जबकि उनमें सुख का लेश भी नहीं है; उनमें असफलता, निराशा एवं दुःख ही दुःख भरा हुआ है, जैसा कि महान् सन्तों का कथन है –

ये फल मीठे जहर भरे हैं,
सुख थोड़ा बिपत घनेरी।

जब मनुष्य नाम की कमाई करता है, तो माया का यह धोख मिट जाता है। तब मनुष्य को यह बात समझ में आ जाती है कि माया झूठ है, जबकि प्रभु का नाम ही सत्य है और सब सुखों का भण्डार है। कबीरदास जी कहते है कि –

!! दोहा !!

कबीर आधी साखी यह, कोटि ग्रन्थ करि जान।
नाम सत् जग झूठ है, सुरत शब्द पहचान।

आधे दोहे में ही करोड़ो ग्रन्थों का सांराश बतलाते हुए कबीरदास जी कहते है कि एकमात्र मालिक का नाम ही सत् है तथा जगत् का सर्व पसारा मिथ्या एवं असत् है। जिसे इस तथ्य की समझ आ गई, वह जगत् में सुरत को नहीं फँसाता वरन् वह अपनी सुरत को सार शब्द के साथ जोड़कर मालिक की भक्ति में दिल लगाता है।

मानव जीवन की सफलता धन–सम्पदा एकत्र कर लेने, पद–प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने अथवा ऐश्वर्य भोग उपलब्ध कर लेने में ही नहीं है, अपितु नाम एवं भक्ति को चित्त में बसाने और उसकी कमाई करने में है जो हमें सब सुखों की खान–सब्र प्रदानन करती है –

जो पल बीते भक्ति में, सोई सफल कहाहिं।
भक्ति बिना जो पल गए, सो किस लेखे माहिं।।

तात्पर्य यह है कि नाम का सुमिरण करने से सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, मुक्ति का मार्ग भी मिल जाता है। माया के पदार्थ तो बन्धन में डालने वाले है। सत्पुरूष श्री गुरू तेग बहादुर जी महाराज कहते है कि –

एक भगति भगवान जिह प्रानी कै नाहि मन।
जैसे सूकरू सुआन नानक मानो ताहि तन।।

अर्थात् जिस प्राणी के मन में भगवान की भक्ति नहीं है, उसका शरीर शूकर तथा श्वान् अर्थात् पशु–सरीखा ही समझना चाहिए। सन्त दादूदयाल जी का कथ है कि –

इन्द्री स्वारथ सब किया, मन मांगै सो दीन्ह।
जा कारण जग सिरजिया, सो दादू कछु न कीन्ह।।

अर्थात् ऐ मनुष्य! तूने इन्द्रियों की तुष्टि के लिए ही सब कुछ किया और जो कुछ मन ने माँगा, उसकी पूर्ति करने में ही लगा रहा। जिसकारण परमात्मा ने तुझे जन्म देकर संसार में भेजा था, वह वास्तविक काम अर्थात् भजन–सुमिरण का काम तुने कुछ भी नहीं किया।

इस मानुष तन की प्राप्ति केवल विषयभोग भोगने के लिए नहीं हुई है, प्रत्युत मोक्षपद की प्राप्ति करने के लिए हुई है। भगवान श्रीराम चन्द्र जी के वचन है कि–

!! चौपाई !!

एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ संकल्प अंत दुखदाई।।
नर तनु पाई विषयँ मन देहीं।
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।।
ताहि कबहुँ मल कहइ न कोई।
गुजा ग्रहइ परस मनि खोई।।

–(श्रीरामचरितमानस्, उत्तकाण्ड)

अर्थात् इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषयभोग कदापि नहीं है। इस जगत् के भोगों की तो बात ही क्या, यदि स्वर्ग के भोग भी प्राप्त हो जायें, तो वे भी तुच्छ है, क्योंकि वे भी अन्त में दुःख देने वाले है। अतः जो लोग मनुष्य–शरीर पाकर भी विषयों में मन लगाते है, वे अज्ञानी अमृत के बदले विष ग्रहण करते है। जो पारसमणि को त्यागकर बदले में धुँधचियाँ ग्रहण करें, उसको कभी कोई बुद्धिमान नहीं कहेगा। तात्पर्य यह है कि भोगों की कामना रखने वाला मनुष्य मोहवश कभी सुख नहीं पर सकता महान् संतों ने ठीक ही कहा है–

कउडी बदलै तिआगै रतनु।।
छोडि जाहि ताहू का जतनु।।
सो संचै जो होछी बात।।
माइआ मोहिआ टेढउ जात।

यह सर्वविदित है कि इच्छाओं की पूर्ति उनको भोगने से नहीं की जा सकती है। जिस प्रकार आग में घी डालने से वह और अधिक प्रचण्ड हो जाती है, उसी प्रकार इच्छाओं को भोगने से वे और अधिक बढ़ जाती है इच्छाएं कभी भी शान्त न होने वाली आग के समान है। वे कभी भी शान्त नहीं होती–

न जातु कामः कामानाम् उपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मन्येव भूय एवाभिवर्धते।।

– (महाभारत)

महर्षि विश्वामित्र जी का भी कथन है कि –

कामं कामयमानस्य यदि कामः समृध्यति।
अथैनमपरः कामो भूयो विध्यति बाणवत्।।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।
कामानभिलषन्मोहान्न नरः सुखमेधते।।

– (पद्मपुराण)

अर्थात् किसी कामना की पूर्ति चाहने वाले मनुष्य की यदि एक कामना पूरी हो जाती है तो दूसरी नई कामना उत्पन्न हो उसे बाण के समान बींधने लगती है। भोगों की इच्छा उपभोग के द्वारा कभी शान्त नहीं होती, प्रत्युत धी डालने से प्रज्वलित अग्नि की भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है।

सांसारिक ज्ञान से, केवल सांसारिक इच्छाओं को ही संतुष्ट किया जा सकता है। अतः आवश्यकता है आन्तरिक प्रकाश की। वह मनुष्य जिसने मन की इच्छाओं को जीत लिया है। वह कर्मो पर भी नियन्त्राण प्राप्त कर सकता है। जो मनुष्य आसक्ति एवं इच्छारहित कार्य करता है, केवल वहीं व्यक्ति विलक्षण सुख और सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकता है।

सभी कामनायें छोड़ जो रहता, परमानन्द में तृत्प सदा।
कर्मो को करता है वह, पर होता नहीं आसक्त कदा।
निरासक्त स्थिरचित्त वह करता, सब कर्म ब्रह्मा के हेतु।
सभी कर्म ब्रह्मार्पित उसके, नहीं होते बन्धन के हेतु।।

– (श्रीमद्भागवद् गीता)

सर्व कर्मो के फल की इच्छा एवं आसक्ति का त्याग कर, जो सदा स्वतन्त्र तथा संतुष्ट रहता हुआ कर्म करता है और अपना हर कर्त्तव्य पालन करता है केवल वहीं व्यक्ति कर्म फल से मुक्त सदा तृप्त और आनन्दमग्न रहता है।

शास्त्रों में लिखा है कि इस लोक में या परलोक में चाहें कहीं भी हों सुख की सभी कामनाओं से ऊपर उठना है। मोक्ष का अर्थ स्वर्ग की प्राप्ति नहीं है। अगर सुख की कामना नाशावान् पदार्थो में करोगें तो वह कभी नहीं मिलेगा। सुख मनुष्य के अन्दर है। निरासक्त होकर जितना अधिक ध्यान हम प्रभु के चरणों में लगातें है, इससे हम लक्ष्य को शीघ्र ही प्राप्त कर सकते है जिस प्रकार एक पका हुआ नारियल अपने आपको छिलके से अलग कर लेता है। इसी प्रकार यदि हम आत्मा को शारीरिक आसक्ति और स्वार्थी इच्छाओं से अलग रहने का रहस्य सीख लेंगे तभी हम इस जीवन में परमात्मा से एकाकार हो सकते है।

अतः हमें अपने मन पर अवश्य नियन्त्राण करना चाहिए, स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार की परिस्थितियों से बचना चाहिए। जब कामनाएं इंसान पर हावी रहेंगी तो जीवन को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने के सब प्रयत्न विफल हो जायेंगे। भाव यह है कि इस विश्व से सच्चे सुख व शान्ति की आशा करना नितान्त भूल और मूर्खता ह ै; किन्तु विषयों की कामनायें मनुष्य को आन्नद के हरे–भरे बाग़ दिखलाकर आत्मज्ञान से विमुख कर देती है। इस भ्रांति में पड़कर मानव अपनी वास्तविक पूंजी को गलत राह पर लुटाने लगता है, जिससे उसका जीवन दुःखदायी हो जाता है।

दुःखों का मूल–तृष्णा है जबकि सुखों क मूल–सब्र है। हमें विचार करना चाहिए कि जगत् की यह सब रचना, मायावी, लुभावने पदार्थ, घमण्ड उत्पन्न करने वाली धन सम्पदा, उद्देश्य से भटकाने वाली ऐश्वर्य सामाग्री, बिजली की उस चमक और बादल की उस छाया के समान है। जिसमें तनिक भी स्थिरता नहीं

है। इसलिए हमे इन भौतिक पदार्थो पर घमण्ड नहीं करना चाहिए। वास्तविक सुख तो प्रभु की भजन–बंदगी में है। जगत् के पदार्थो का उपयोग करो परन्तु अपने हृदय को निष्काम मानव सेवा, प्रभु के नाम, प्रभु के चरणों और उसके द्वारा बताए हुए मार्ग से जोड़कर कर रखो। जब प्रभु भक्ति की आशा हमारी हृदय में स्थान पा लेंगी, हमारी सब इच्छाएं स्वतः ही पूर्ण हो जायेगी अर्थात् जब चित मालिक की भक्ति में लग जाता है। तब कोई आशा, तृष्णा और इच्छा नहीं रहती है जब कोई आशा, तृष्णा और इच्छा ही नहीं रहती है तो दुःख काहे का?

''तमन्ना है हर इन्सान की,
मैं हमेशा सुखी और आनन्द में रहूँ।
कभी भी दुःख मुझको न सताये,
सदा खुशियों से भरपूर रहूँ।।''

परिशिष्ट

उपजीव्य ग्रन्थ

1- नरेश मेहता, समिध ;भाग–पद्ध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 2005।

2- नरेश मेहता, समिधा ;भागद्ध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. 2005।

आधर ग्रन्थ

मुष्क काव्य

3- नरेश मेहता, दूसरा सप्तक ;सम्पादक अज्ञेयद्ध, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1981।

4- नरेश मेहता, अरण्या, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985।

5- नरेश मेहता, बनपाखी सुनो, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1997।

6- नरेश मेहता, बोलने दो चीड़ को, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार प्राईवेट लिमिटेड, बम्बई, 1961।

7- नरेश मेहता, मेरा समर्पित एकांत, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1962।

8- नरेश मेहता, उत्सवा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1979।

9- नरेश मेहता, तुम मेरा मौन हो, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993।

10- नरेश मेहता, आखिर समुद्र से तात्पर्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988।

11- नरेश मेहता, पिछले दिनों नंगे पैरों, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989।

प्रबन्ध काव्य

12- नरेश मेहता, संशय की एक रात, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा.लि.मि., बम्बई, 1962।

13- नरेश मेहता, महाप्रस्थान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1975।

14- नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995।

15- नरेश मेहता, शबरी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997।

16- नरेश मेहता, प्रार्थना पुरूष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

सहायक ग्रन्थ

17- डॉ0 केदारनाथ सिंह, महादेवी वर्मा के काव्य में बिम्ब विधन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्र.सं. 1971।

18- डॉ0 कल्याण वैष्णव, नरेश मेहता के काव्य का अनुशीलन, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2010।

19- डॉ0 केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब–विधन का विकास, भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली, प्रं.सं. 1971।

20- डॉ0 केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधन ;शोध प्रबंध्द्ध राधकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2011।

21- डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 नगेन्द्र ग्रन्थावली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रं.सं. 1998

22- डॉ0 शशिबाला रावत, नरेश मेहता के काव्य का अनुशीलन ;रस सिद्वांत के परिप्रेक्ष्य मेंद्ध, पूर्वाचल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008।